दलित आत्मकथा एवं आत्मकथाकार

संपादक
डॉ. संदीप श्रीराम पाईकराव
डॉ. ख़ाज़ी मुख्तारोद्दिन

ए. आर. पब्लिशिंग कंपनी
1/11829, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन: +919968084132, +919910947941
arpublishingco11@gmail.com

DALIT AATMKATHA EVAM AATMKATHAKAR
Edited by Dr. Sandip Shriram Paikrao, Dr. Khazi Mukhtaroddin

ISBN : 978-93-86236-34-0
Criticism

© सुरक्षित

संस्करण : 2017
ले-आउट : शेष प्रकाश शुक्ल
मोबाइल : 97-16-54-35-13

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग
करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

कॉम्पैक्ट प्रिंटर, दिल्ली-110 032 में मुद्रित

मराठी से हिन्दी में अनूदित आत्मकथा 'अछूत' 71
—प्रा. विदया आडभाई

आत्मकथा 'एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी' 76
—डॉ. जे. सेन्दामरै

दलित आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' 82
—बी. तीरूमला देवी

'अपने-अपने पिंजरे' की ऊर्ध्व मुखी यात्रा : एक अध्ययन 85
—डॉ. के.वी. कृष्णमोहन

'जूठन' में चित्रित सामाजिक जीवन 90
—एम. रघुनाथ

दलित जीवन का आईना 'जूठन' 96
—डॉ. डी. उमादेवी

सूरजपाल चौहान कृत 'तिरस्कृत' (दलित जीवन का दस्तावेज) 101
—डॉ. आर. श्रीदेवी

'शिकंजे का दर्द' में अभिव्यक्त दलित स्त्री जीवन का संघर्ष 107
—एम. मधुकर राव

'शिकंजे का दर्द' स्त्री व्यथा की कथा 112
—डॉ. सन्तोष विजय येरावार

लेखक परिचय ***118***

'शिकंजे का दर्द' स्त्री व्यथा की कथा

डॉ. सन्तोष विजय येरावार

'शिकंजे का दर्द' सुशीला टाकभौरे लिखित आत्मकथा है जो स्त्री वेदना तथा संघर्ष का सशक्त दस्तावेज है। आत्मकथा स्त्री और दलित होने की वेदना की करुण गाथा है। एक तरफ दलित स्त्रियों के प्रति समाज की घृणित, विकृत और कुपोषित मानसिकता और दूसरी तरफ पुरुषी अहंकारी, दमनपूर्ण, असमानतावादी एवं विशाक्त मानसिकता ऐसे दोहरे शिकंजे में फंसी स्त्री की कहानी 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा है। दलित स्त्री दोहरे अभिशाप में जीती हैं। एक तरफ स्त्री होने का दर्द जो उसे अपमानित एवं प्रताड़ित करता है। दूसरी तरफ दलित होने का दर्द जो उसके शोषण, अन्याय, विरोध एवं तिरस्कार का उत्तरदाई हैं। दलित समाज में व्याप्त अन्धश्रद्धा, दैववाद, बेरोजगारी, आर्थिक विपन्नता, नशाखोरी, निम्न जीवन स्तर तथा सुख-सुविधाओं का अभाव स्त्री जीवन को और बदहाल बना देता है। वर्णवाद, जाति-पाति, छूआछूत, एवं ऊच्च-नीचता, के कारण दलित स्त्री सदैव प्रताड़ना का शिकार होती हैं। 'शिकंजे का दर्द' ऐसे ही स्त्री की कथा हैं जो शोषण, विषमता, अपमान, पीड़ा, रीति रिवाज, परम्परा, लिंगभेद, गरीबी एवं तिरस्कार के चक्रव्यूह में फँसी हैं।

'सुशीला जी को बाल्यकाल से ही दूषित वर्णवादी मानसिकता का शिकार होना पड़ा। वर्णवाद ने दलितों को लांछित, अपमानित और घृणित किया है। वर्णवाद ने सवर्णों को शूद्रों की लूट और शोषण का अधिकार दिया तो दलितों के हिस्से में दासता, वेदना और विषमता आई। सुशीला जी को वर्णवाद के कारण सबसे पीछे अछूतों में बिठाया जाता। जातिवादी मानसिकता ने सुशीला जी के साथ पशु जैसा व्यवहार किया जाता। छुआछूत, तथा अस्पृश्यता ने सम्पूर्ण समाज को दूषित एवं बौना बना दिया। स्कूल से लेकर समाज के तथा-कथित सवर्णों की अस्पृश्यता की जहरीली हवा से प्रभावित थे। सवर्णों के छात्र कक्षा से जब घर

वापस आते तो उनके परिवार वाले अपने बच्चों की शुद्धीकरण प्रक्रिया करते और कहते "न जाने कौन-कौन से जात के बच्चों के साथ बैठकर पढ़ आते हैं। सबकी छुआछूत घर में लाते है।"[1]

उच्चवर्गों ने हमेशा दलित को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। उसके भेद-भाव भरा रवैया अपनाया है। स्कूल में दलितों को सबसे अलग बिठाया जाता ताकि धर्म भ्रष्ट ना हो। सुशीला जी कहती हैं, स्कूल में सभी लोग चपरासी, शिक्षक और बच्चे मुझसे निश्चित दूरी बनाके रहते थे। चपरासी पानी देते समय स्पर्श ना होने की पूरी खबरदारी बरतता था, और सवर्णों को खुली छूट होती थी। दलित छात्र सुशीला जब कक्षा में आगे बैठती तो गुरुजी कहते थे, सुशीला तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम्हें सबसे पीछे बैठना चाहिए। फिर उन्होंने पुरी कक्षा को डांटकर कहा था, "जिसको जिस जगह पर बैठने के लिए कहा गया हैं वह अपनी जगह पर बैठगा। कोई भी अपनी जगह नहीं बदलेगा"[2] दलित से सम्बन्धित सारी उपेक्षाएँ और सामाजिक विकृतियों को झेलना दलित स्त्री की नियति बन गयी है। "स्कूल में अध्यापकों, कर्मचारियों एवं सहपाठियों से उपेक्षा ही मिलती है, सबके मन में मेरे लिए एक निश्चित दूरी थी, मैं नहाकर साफ-सुथरे कपड़े पहनकर स्कूल जाती थी, फिर भी स्कूल के बच्चों, अध्यापकों और चपरासी के लिए अछूत ही थी, मैं देखती थी, सवर्ण घरों के स्कूल से लौंटे बच्चों पर घर के बाहर ही पानी छिड़क दिया जाता था।"[3] संविधान ने तो सभी को समान अधिकार दिया है। परन्तु समाज में समानता का अधिकार नहीं दिया हैं। उच्चवर्ग द्वारा सदैव पिछड़ी जाति निचली जाति के लोगों के साथ रहना तो छोड़ो साथ बैठना तक पसंद नहीं करता हैं। गाँव में तांगेवाले लेखिका को बैठने के लिए कहते थे तो तांगे में बैठे लोग तांगेवाले से कहते थे—"अरे भाई, क्या अँधेर कर रहे हो? किसको हमारे साथ बैठा रहे हो? जरा सोच समझकर सवारी देखकर बैठाओ नहीं तो हम उतर जाते हैं।"[4] जातिवाद के कारण मनुष्य संवेदना शुन्य बन गया है। भारतीय समाज व्यवस्था में बाधा निर्माण करने वाले तत्व जातीयता हैं जिसने मानव को बाँट दिया है। दलित वर्ग के साथ अत्यन्त घृणास्पद व्यवहार किया जाता है। निम्न जाति के लोगों से संवेदना नहीं होती परन्तु पशु से संवेदना होती है। सुशीला टाकभौरे कहती है—"मुहल्ले के बनिये कुत्ता बींमार होने पर लोग बीमार के घर संवेदना प्रकट करने गये। जो लोग एक कुत्ते के लिए इतने संवेदनशील हो सकते हैं, वो अपने पडोसी इन्सान के प्रति इतने संवेदनशुन्य, हृदयदीन क्यों हो गये? सिर्फ जाति के कारण? क्या हम कुत्ते से भी गये गुजरे है।"[5] समाज मैं कैसी विडम्बना है, निम्न जाति के लोगों को उच्चजाति के लोग अपने पास बिठाने को तैयार नहीं और

दूसरी और वही लोग कुत्ते के प्रति संवेदना व्यक्त करने जाते हैं। अर्थात पशु से बत्तर और क्रूर व्यवहार निम्न जाति के लोगों के साथ किस तरह से होता है इसका जीवंत प्रमान सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' है।

दलितों के हिस्से में सदियों से तिरस्कार, अपमान, उपेक्षा, घृणा और दरिद्रता ही आयी हैं। पग-पग पर अपमानित करने का कुकर्म किया जाता हैं। सुपरवायजर लेखिका से कहते हैं–"हमें महीने भर का पूरे परिवार का मलमूत्र उठाने का सिर्फ एक या दो रुपया ही देते थे, साथ में कुछ फटे पुराने कपड़े कुछ खराब अनाज, बचा-कुछा जूठा खाना वगैरह भी उन्हें देते थे।"[6] अपमानित करने और नीचा दिखाने में सभ्य जाति के लोग बडप्पन मानते हैं और उन्हें ऐसा करने से असुरी आनंद मिलता है। दलितों के सामाजिक शोषण के साथ-साथ उनका आर्थिक शोषण भी किया जाता हैं। काम के बदले में दाम अत्यन्त कम मात्रा में मिलता है। दलितों की मजबूरी है कि उन्हें सवर्णों पर आश्रित होना पड़ता हैं। इसलिए वे बिना किसी विरोध के जो दिया जाता लेते थे। किस प्रकार आर्थिक शोषण किया जाता है इस यथार्थ को उघाडा गया हैं। जिस प्रकार स्त्री को जाति के शिकंजे में जखड़ा जाता हैं। उसी प्रकार स्त्री रूपी पिंजरे में भी वह जखड़ी हुई होती हैं। स्त्री होने के कारण समाज और परिवार द्वारा अनेको बन्धन उस पर लादे जाते हैं। हमारे पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था नें स्त्री को अस्तित्वहीन, आत्महीन, प्रतिक्रियाहीन, वाणीहीन, दासी एवं सेविका बना दिया है। स्त्री को परनिर्भर एवं निर्णय शुन्य बनाने में भी पितृसत्ताक समाज व्यवस्था का योगदान हैं। स्त्री होने के कारण अनेकों पाबंदियाँ स्त्री पर लगाई जाती हैं। रहन-सहन, वेशभूषा, रीति रिवाज, संस्कार, खान-पान एंव आचरण सभी को पुरुष प्रधान व्यवस्था द्वारा नियंत्रित किया जाता है। बाल्य काल से ही उसे स्त्री होने का नकारात्मक अहसास समाज एवं परिवार द्वारा कराया जाता है। स्त्री को केवल एक स्त्री होने के कारण बंदिस्त जीवन जीना पड़ता है। वह अपने मर्जी से जीवन व्यतीत नहीं कर पाती है। यहाँ तक कि उसे अपना जीवन साथी तक चुनने का अधिकार नहीं है। पुरुष प्रधान विचार धारा नें स्त्रियों को अपनी सोच के अधीन कर रखा था इस मानसिकता को भी सुशीला जी ने अपनी आत्मकथा में व्यक्त किया है। लेखिका की माँ कहती है–"बेटी दुनियाँ बहुत खराब है, अकेले कहीं नहीं जाना। जहाँ जाना हो, हमको बताओ, हम साथ चलेंगे।"[7]

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में अनेमेल विवाह से निर्माण संत्रास, त्रासदी और पीड़ा को भी उघाड़ा गया है। अठरा साल की लेखिका का विवाह छत्तीस वर्षीय सुन्दरलाल टाकभौरे से हुआ है। अनमेल विवाह के कारण, स्त्री उत्पीड़न में इजाफा

होता है जो सुशीला जी के साथ हुआ। सीता बर्डी अस्पताल की नर्स लेखिका को कहती है।" "तुम्हारी माँ ने देखा नहीं, इतनी बड़ी उम्र के आदमी के साथ तुम्हारा विवाह कर दिया"[8] सुन्दरलाल टाकभौर भी पुरषी अहंकारी मानसिकता से ग्रस्त थे वे सुशीला जी से दासी और सेविका जैसा व्यवहार करते। अमानवीयता, पशुता, तिरस्कार, अपमान और विरोध का शिकार सुशीला जी को होना पड़ा था। एक बार सुशीला जी खाना खा रही थी तब उनके पति ने क्रोध में उनकी थाली को लात मारी सारा खाना बिखर गया परन्तु इस अवमानना का कारण पूछने का साहस सुशीला जी जुटा नहीं पाई। सुशीला जी के साथ उनके पति सदैव पशु जैसा व्यवहार करते थें जब वे उनसे कुछ कहने जाती तो वें कहते—"मेरे पैरों पर अपना सिर रखकर माफी माँग तब मैं तेरी बात मानूँगा।"[9] सुशीला जी को घर में लाचारी का जीवन बिताना पड़ता था। एक अनकहे भय के माहौल में वे निरंतर जलती रहती थी। कोल्हू के बैल की तरह वे निरंतर घर के कार्यों में लीन रहती उसके बावजूद प्रताड़ना, तिरस्कार, घृणा का सामना उन्हें करना पड़ता था। सुशीला जी को अत्यन्त हीन होकर जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

भारतीय समाज व्यवस्था नें स्त्री अस्तित्व को, स्त्री की पूर्णत्व को केवल वासनापूर्ति और पुत्र प्राप्ति तक सिमित रखा है। जो विवाहित स्त्री खानदान को वारीस नहीं दे सकती उसको परिवार और समाज द्वारा अशुभ कहकर प्रताड़ित एंव अपमानित किया जाता है। स्त्री शोषण में पुरषी मानसिकता से विकसित स्त्रियों का भी बहुत बड़ा योगदान होता है। जब लेखिका को संतान प्राप्ति नहीं होती तो ननद कहती है—"बांझ बझोंठे का धन कौन खायेगा"[10] सुशीला जी को परिवार के स्त्रियों द्वारा भी अपमानित किया जाता उनकी ननद कहती है। "दहेज में कुछ नहीं मिला नीच खानदान की है, कुछ काम करना नहीं आता बिल्कुल भेताड हैं...कितनी अच्छी लड़कियों के रिश्ते थे, खेडे की लेडी ले आये है, पागल हैं, मूर्ख है।"[11] सुशीला जी पर परिवार के पुरुष सदस्यों के साथ-साथ महिला सदस्यों ने भी दुख और पीड़ा का वर्षाव किया था।

सुशीला जी को परिवार के सदस्य जब गाली-गलौच करते, मारते-पीटते तो रोने चिल्लाने की आवाज बाहर न आये इसलिए रेडियो के आवाज को बढ़ाते थे। अत्यन्त अमानवीय व्यवहार सुशीला जी के साथ किया जाता था। वे कहती है—"मेरे साथ घर में मारपीट गाली गलौच सब कुछ हुआ। बाल पकड़कर खींचना, लातों से मारना, गर्दनपर मुक्के बनाकर मारना, पीठ पर घूँसे मारना मैने सब कुछ सहा।"[12] इस तर हैवानी बर्ताव सुशीला जी के साथ किया जाता था।

सुशीला जी का परिवार के सदस्यों द्वारा शारीरिक, मानसिक शोषण के

साथ-साथ आर्थिक शोषण भी किया जाता था। सुशीला जी के पति उनसे सारा वेतन लेते और पूछने पर मारते-पीटते थे। सुशीला जी खुद वेतनधारी होने के बावजूद पति के सामने हाथ फैलाने पड़ते थे। उन्हें अपना ही वेतन अपनी मर्जी से खर्च करने का अधिकार नहीं था। उनके पति अत्यन्त निर्मम एवं क्रोधी थे छोटी-छोटी गलती पर गाली देना और मारना उनके लिए आम बात बन गयी थी। एक दिन वेतन के विषय में पति को बताना भूल गयी तो पति ने कहा—"तेरी हिम्मत कैसे हुई रुपये लाकर नहीं बताने की...तेरी औकात सिर्फ एक बर्तन माँजनेवाली नौकरानी के बराबर है।"[13] पग-पग सुशीला जी को पति, सास एवं ननद द्वारा प्रताड़ित किया जाता था। जिस कारण जीवन के प्रति निराशा व्यक्त करते हुए वे कहती हैं—"मेरा हाल अलग था। मेरी दुनिया अलग थी। मेरा मन अजीब-सा महसूस करता था-शादी क्या है? पति क्या है? सुख क्या है? अपमान क्या है? सब निरर्थक लगते थे।" सुशीला जी का यह कथन उनकी उदासी, निराशा, दुख, पीड़ा एवं वेदना का परिचायक है। इतनी निरंतर यातना के बावजूद लेखिका नयी आशा की किरण पाठकों को देती है।

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा स्त्री को दोहरे अभिशाप से मुक्ति का प्रयास है। दलित स्त्री परम्परा, पुरुषी मानसिकता, मनुवादी सोच, जातीयता के शिकंजे में जखड़ी हुई है। परिवार एवं समाज द्वारा प्रताड़ित एवं अपमानित सुशीला जी आत्मकथा के भूमिका में कहती हैं हर प्रकार के शोषण से मुक्ति पाना दलित साहित्य का उद्देश्य है। "मेरी आत्मकथा दलित आत्मकथा होने के साथ एक स्त्री की आत्मकथा भी है। दलित स्त्री को दोहरे संताप से मुक्ति चाहिए।" इस स्त्री मुक्ति का प्रयास सुशीला जी ने अपनी व्यथा, संघर्ष, विरोध एवं आत्मनिर्भरता के द्वारा करने का साहसी प्रयास किया है। शोषण के विरोध में आवाज बुलन्द कर स्त्रियों को आत्मनिर्भर, निर्भीक एवं सशक्त बनाने की प्रेरणा आत्मकथा देती है।

सन्दर्भ

1. हंस, पंकज चतुर्वेदी, सं. राजेन्द्र यादव, पृ. 37
2. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृ. 05
3. वही, पृ. 18
4. वही, पृ. 115
5. वही, पृ. 174
6. वही, पृ. 252
7. वही, पृ. 109
8. वही, पृ. 151

9. हंस, पंकज चतुर्वेदी, सं. राजेन्द्र यादव, पृ. 145
10. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृ. 161
11. वही, पृ. 145
12. हंस, पंकज चतुर्वेदी, सं. राजेन्द्र यादव, पृ. 200
13. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृ. 148